<u>“पंडित दीनदयाल उपाध्याय की वैचारिकता और राष्ट्रवाद”</u>

राहुल कुमार

पंडित दीनदयाल उपाध्याय (1916-1968) का चिंतन एक शाश्वत विचारधारा से जुड़ता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों के आधार पर समाज और राष्ट्र जीवन को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। एकात्म मानववाद, जिसे उपाध्याय जी ने एक 'वाद' की श्रेणी में न रखकर 'जीवन दर्शन' के रूप में प्रस्तुत किया व्यक्ति, समाज, प्रकृति और ईश्वर के बीच एकात्मता और समन्वय स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त करता है। उनके विचार को भारतीय राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दर्शन के क्षेत्र में एक मौलिक हस्तक्षेप माना जाता है। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत के लिए एक स्वदेशी, संतुलित और समग्र विकास का मार्ग प्रस्तुत किया, जिसे 'एकात्म मानववाद' के रूप में जाना जाता है। **“एकात्म मानव दर्शन का अर्थ है मानव – जीवन तथा संपूर्ण प्रकृति के एकात्म संबंधों का दर्शन।”1**
उनकी वैचारिकता, जो भारतीय संस्कृति और ऋषि परंपरा से गहराई से जुड़ी हुई थी, पाश्चात्य पूंजीवाद और मार्क्सवादी साम्यवाद दोनों के एकांगी और चरमपंथी विचारों को खारिज करते हुए राष्ट्रवाद की एक नई, सांस्कृतिक व्याख्या प्रस्तुत करती है। उनके दर्शन के मूलभूत सिद्धांतों, राष्ट्रवाद की अवधारणा और उनके विचारों की समकालीन प्रासंगिकता को एक गहन विश्लेषण की आवश्यकता है।

एकात्म मानववाद

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज और राजनीति एक गंभीर वैचारिक दिशाहीनता की स्थिति में थी। देश के विकास के लिए पश्चिमी औद्योगिक और राजनीतिक मॉडलों को तेजी से अपनाया जा रहा था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इस प्रवृत्ति की तीखी आलोचना की। उनका मानना था कि भारत को अपने स्वदेशी विकास मॉडल की आवश्यकता है, जिसमें ‘मनुष्य’ केंद्र बिंदु हो। **“पश्चिमी देशों में मानवतावाद के नाम पर अनेक विचारधाराएं प्रचलित हैं, किंतु उनमें से अधिकांश विचारधाराएं केवल भौतिकवादी हैं, अतः वे मानव – कल्याण की दृष्टि से सफल नहीं रही है। जीवन का सर्वांगीण विचार भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है।”2** इसीलिए पंडित जी ने भारत पर प्रभाव डाल रहे पूंजीवादी व्यक्तिवाद और मार्क्सवादी समाजवाद दोनों की अतिवादिता को अस्वीकार किया। वे मानते थे कि पश्चिमी विचारधाराएँ या तो व्यक्तिवाद को सर्वोपरि रखती हैं (पूंजीवाद) या फिर व्यक्ति की पहचान को एक बड़ी, हृदयहीन मशीन (साम्यवाद) का हिस्सा बनाकर कुचल देती हैं। इन दोनों प्रणालियों की समस्या यह थी कि ये केवल मानव के भौतिक और मानसिक आयामों पर ध्यान केंद्रित करती थीं।

तत्कालीन नेहरूवादी मॉडल ने तीव्र औद्योगीकरण के माध्यम से भौतिक समृद्धि पर अत्यधिक बल दिया, जिससे भारतीय समाज में उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला और सामाजिक असमानता तथा क्षेत्रीय असंतुलन उत्पन्न हुए। उपाध्याय जी ने इस विचारधारा को भारतीय संस्कृति के लिए ठीक ना मानते हुए, एक मध्य मार्ग की तलाश की। जो पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों के गुणों का मूल्यांकन कर सके, लेकिन उनकी अतिवादिता और विदेशीपन की आलोचना भी करे। **“जिस अर्थशास्त्र को मानव के समग्र जीवन और उसके आर्थिक घटकों की भांति आर्थिकेतर घटकों के संबंधों का भान ना हो, वह मानव को शाश्वत कल्याण की योग्य दिशा कदापि नहीं दे सकता। तात्पर्य, आज विश्व विकास का एक चरण पूरा कर खड़ा है। भौतिक समृद्धि के साथ ही मानसिक स्वास्थ्य एवं संतोष प्राप्त करा देने वाली संजीवनी की उसे एषणा (तलाश) है। दीनदयाल**

जी द्वारा प्रस्तुत एकात्म मानव दर्शन और उसके अंतर्गत आने वाली एकात्म अर्थनीति में से इस संजीवनी को अनुभव किया जा सकता है।"3

एकात्म मानववाद का जन्म केवल एक दार्शनिक अवधारणा के रूप में नहीं हुआ, बल्कि यह 1960 के दशक के राजनीतिक विमर्श के जवाब में एक सचेत वैचारिक स्थापत्य था। यह एक प्रयास था जिससे हिंदू राष्ट्रवादी आंदोलन को भारतीय मुख्यधारा की राजनीति में स्थापित किया जा सके, विशेषकर गांधीवादी सिद्धांतों (जैसे स्वदेशी और ग्राम स्वराज्य) के चयनात्मक समावेश के माध्यम से ।

समग्र मानव की अवधारणा: शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समन्वय

पंडित जी ने स्पष्ट किया कि व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों का एक एकीकृत समुच्चय है । किसी भी व्यक्ति के समग्र विकास के लिए इन चारों तत्त्वों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है । पाश्चात्य दर्शन, विशेष रूप से पश्चिमी मानववाद, मनुष्य को मुख्य रूप से एक जैविक इकाई या तर्कसंगत प्राणी मानता है , जबकि भारतीय चिंतन में मनुष्य एक आध्यात्मिक इकाई है, जिसका शरीर उदात्त लक्ष्य (आत्म-साक्षात्कार) प्राप्त करने का साधन है ।

एकात्म मानववाद इस बात पर जोर देता है कि ये चारों घटक अविभाज्य हैं। यदि किसी व्यक्ति को बेहतरीन भोजन दिया जाए लेकिन उसे कैद कर लिया जाए तो वह खुश नहीं हो सकता। मानसिक चिंता शारीरिक सुख को नष्ट कर देती है । इसी प्रकार शारीरिक आराम और मानसिक संतुष्टि के बावजूद यदि कोई व्यक्ति बौद्धिक भ्रम में उलझा है (पागलपन के समान राज्य) तो वह दुखी रहता है । इसलिए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शांति तथा संतोष सभी आवश्यक हैं। एकात्म मानववाद इन सभी तत्त्वों के संतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त करता है ।

पुरुषार्थ चतुष्टय का सिद्धांत

मनुष्य के इन चार आयामों के अनुरूप, उपाध्याय जी ने मानव जीवन के चार सार्वभौमिक उद्देश्य (पुरुषार्थ) बताए: धर्म (नैतिक कर्तव्य), अर्थ (धन/संपदा), काम (इच्छा या संतुष्टि), और मोक्ष (परम मुक्ति या मोक्ष) । **"मोक्ष - प्राप्ति के लिए कर्ममार्ग, भक्ति मार्ग व ज्ञानमार्ग, ये तीन प्रमुख मार्ग हमारे यहाँ बताए गए हैं। इनमें कर्म मार्ग का संबंध शरीर के साथ, भक्ति मार्ग का मन के साथ और ज्ञान मार्ग का बुद्धि के साथ है।"4**

इन उद्देश्यों के बीच एक स्पष्ट पद अनुक्रम स्थापित किया गया है। 'धर्म' को मूलभूत और 'मोक्ष' को परम उद्देश्य माना गया है । उपाध्याय जी का मत था कि मानव जीवन के सभी भौतिक और भावनात्मक लक्ष्य—अर्थ और काम—को 'धर्म' द्वारा नियंत्रित और नियमित किया जाना चाहिए। **"धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चतुर्विध पुरुषार्थों में धर्म आधारभूत पुरुषार्थ है तो मोक्ष परम पुरुषार्थ। शरीर – मन – बुद्धि – आत्मा के सुख के लिए जिन चतुर्विध पुरुषार्थों की योजना हमारे यहाँ है, उन्हीं में मोक्ष एक पुरुषार्थ है, इसे भूलाना नहीं चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि मोक्ष पुरुषार्थ भी सुख – प्राप्ति के लिए ही है। इससे भी आगे जाकर कह सकते हैं कि मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि घनीभूत परम सुख की अखंड अनुभूति देने वाली अवस्था है।"5**
पश्चिमी पूंजीवादी और समाजवादी विचारधाराओं की मौलिक समस्या यह थी कि वे केवल शरीर और मन की जरूरतों पर विचार करती थीं, जिससे वे केवल भौतिकवादी उद्देश्यों, यानी 'अर्थ' और 'काम' पर आधारित थीं ।

इसके परिणामस्वरूप केवल 'सुख' पर ध्यान केंद्रित होता है, जबकि एकात्म मानववाद का लक्ष्य 'सुखी, संतुष्ट और शांत' मानव के माध्यम से अंततः 'आनंद' की प्राप्ति है । यह दर्शन पश्चिम के भौतिकवादी विचार के चरम पर पहुंचने से पहले ही उसके खिलाफ एक वैचारिक युद्ध का शंखनाद करता है, जहाँ आत्म-बोध करने वाले व्यक्ति को समाज का शीर्ष माना गया है ।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद पाश्चात्य राजनीतिक-क्षेत्रीय राष्ट्रवाद से मौलिक रूप से भिन्न है। उन्होंने राष्ट्र को केवल भूमि का टुकड़ा नहीं, बल्कि एक जीवंत, आध्यात्मिक इकाई माना । **“मानव समाज के अंतर्गत कोई स्पष्ट लक्ष्य, स्पष्ट विचार, स्पष्ट मिशन, स्पष्ट उद्देश्य या कोई आदर्श होता है तथा वह समाज विशेष, अपनी भूमि विशेष के प्रति मातृ भाव (माता के समान मानने का संकल्प रखता है) तो उस समाज या समुदाय का वह राष्ट्र या मातृभूमि कहलाती है। इसे राष्ट्र (nation) कहा जाता है।”6**

उपाध्याय जी के अनुसार, राष्ट्र केवल भूमि, जनसंख्या और शासन की इकाई मात्र नहीं है। राष्ट्र एक जीवंत आत्मा है और भारत की आत्मा उसकी संस्कृति में निहित है । राष्ट्र का आधार 'भारत माता' है। उन्होंने कहा, "हमारी राष्ट्रीयता का आधार भारत माता है, केवल भारत ही नहीं। माता शब्द हटा दीजिए तो भारत केवल जमीन का एक टुकड़ा बनकर रह जाएगा”।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है और इस आत्मा के निकल जाने पर राष्ट्र नष्ट हो जाता है । भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सनातनता है, जिसके कारण राष्ट्र के वर्षों तक पराधीन रहने पर भी इसकी संस्कृति अक्षुण्ण रही। उनका यह मानना था कि **“प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपने ‘स्व’ का विचार करना आवश्यक होता है। स्वत्व के बिना स्वराज का कोई अर्थ नहीं होता। आखिर प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रकृति के अनुसार प्रयास करते हुए सुखी और संपन्न जीवन व्यतीत कर सकने के लिए ही स्वतंत्रता की अभिलाषा रखता है।”7** भारत में रहने वाला और इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह ही एक जन है और उनकी जीवन प्रणाली, कला, साहित्य और दर्शन ही भारतीय संस्कृति है। यह संस्कृति ही भारतीय राष्ट्रवाद का आधार है, और इसमें निष्ठा रखने पर ही भारत एकात्म रह सकता है ।

चिति और विराट की अवधारणा

राष्ट्रवाद की उनकी संकल्पना को समझने के लिए दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं: 'चिति' और 'विराट'।
उपाध्याय जी के अनुसार, प्रत्येक राष्ट्र का अपना सांस्कृतिक और सामाजिक केंद्रीय विचार होता है, जिसे 'चिति' कहते हैं । इसे राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्र की आत्मा कहा जाता है । यह वह सिद्धांत है जो राष्ट्र को सामूहिक रूप से बांधे रखता है। दूसरी ओर ‘विराट’ किसी समाज की अद्वितीय विशेषताओं या सामूहिक अभिव्यक्ति को दर्शाता है । दीनदयाल जी ने कहा कि चिति राष्ट्र की आत्मा है, और विराट उसका प्राण है ।
यह चिंतन राष्ट्र को व्यक्तियों के बीच हुए किसी सामाजिक अनुबंध से उत्पन्न हुई संरचना के रूप में नहीं देखता बल्कि एक स्वाभाविक जीवित जीव के रूप में देखता है, जो अपनी स्थापना के समय ही एक निश्चित 'राष्ट्रीय आत्मा' (चिति) के साथ पूर्ण रूप से जन्म लेता है । इस सामूहिक चेतना के प्रति वफादारी ही उपाध्याय जी के राष्ट्रवाद का मूल आधार है।

पाश्चात्य राष्ट्रवाद से भिन्नता

उपाध्याय जी ने पाश्चात्य राष्ट्रवाद की आलोचना की, जिसे वे विश्व शांति के लिए खतरा मानते थे। उन्होंने राजनीतिक-क्षेत्रीय राष्ट्रवाद को अस्वीकार किया, क्योंकि यह सीमाओं और संप्रभुता पर आधारित था। इसके विपरीत, उन्होंने भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समर्थन किया। **"पश्चिमी राष्ट्रवाद की भारत के राष्ट्रवाद के साथ तुलना करना ही अनुचित है। पश्चिम ने द्वैत के आधार पर संघर्ष के ढोल पीटे हैं तो भारत ने अद्वैत के आधार पर एकात्मता की मुरली बजाई है। हैं तो दोनों वाद्य ही, किंतु दोनों की स्वर तरंगों में बहुत अंतर है। हमें इस अंतर को ध्यान में लेकर ही अपने राष्ट्र संगठन का विचार करना चाहिए।"8**

उन्होंने भारत के संघीय संविधान और 'यूनियन ऑफ स्टेट्स' सिद्धांत की भी आलोचना की। उनका तर्क था कि यह अवधारणा पश्चिमी सामाजिक अनुबंध सिद्धांतों से प्रेरित है, जो केंद्र और राज्यों के बीच संघर्ष को जन्म देती है और भारतीय राष्ट्रीय जीवन की नींव को हिलाती है। उन्होंने जाति, धर्म, भाषा या प्रांत पर आधारित विशेष अधिकारों को 'धर्म' के सिद्धांतों के विपरीत माना। **"पाश्चात्य राष्ट्रों का उदाहरण भारत के संदर्भ में देते समय किन्हीं आधारभूत वास्तविकताओं को ध्यान में लेने के बाद बोलना ही उचित है। पहली यह कि भारत के राष्ट्र प्रेम, एकता, एकात्मता आदि का जन्म या संवर्धन परिस्थिति विशेष की प्रतिक्रिया के नाते नहीं हुआ है। वह पूर्णतः स्वयंभू, भावनात्मक एवं क्रांतिदर्शी ऋषियों के अलिप्त चिंतन से साकार हुआ है। पाश्चात्य राष्ट्रवाद के उद्गम और विकास पर विहंगम दृष्टि डालने पर पाया जाता है कि क्रिया -प्रतिक्रिया के नाते ही हुआ है।"**9 इसके बजाय उन्होंने ऐसे संविधान का समर्थन किया, जिसमें कार्यकारी और निर्णय लेने की शक्तियाँ क्षेत्रीय राज्यों से लेकर ग्राम पंचायतों तक निचले स्तरों पर विकेंद्रीकृत हों।

धर्म की विस्तृत व्याख्या

दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन में 'धर्म' एक केंद्रीय अवधारणा है, जिसे वे 'रिलीजन' या पंथ से स्पष्ट रूप से अलग मानते थे। उन्होंने जोर दिया कि धर्म का अर्थ पूजा स्थल तक सीमित नहीं है। अक्सर लोग धर्म और पंथ को एक ही मान बैठते हैं **"पंथ का निर्माण प्रायः किसी एक विशेष जन – समूह के परिवेश में होता है। अतः उस विशेष समूह, उसके विकास स्तर, सामाजिक परिस्थितियों, उस विशिष्ट कालखंड की विशिष्ट समस्याओं आदि को ध्यान में रख कर निश्चित किए गए कुछ नीति नियमों, विधिनिषेध, ईश्वर की उपासना की पद्धति जैसी बातों पर पंथ का विशेष आग्रह होता है।....किंतु धर्म इस प्रकार देश, काल परिस्थितियों में बंधा नहीं होता। एक प्रेरक, एक ग्रंथ और कुछ विधिनिषेधात्मक आदेशों के सूत्र आदि की परिधि में पंथ तो आता है, किंतु धर्म उसमें सीमित नहीं होता। हमारे यहाँ का उदाहरण लें तो सिख, बौद्ध, जैन, वैष्णव, ये से रिलीजन या पंथ अथवा सम्प्रदाय हैं। किंतु सबका धर्म एक ही हिंदू धर्म के नाम से पहचाना जाता है।"10** धर्म जीवन को धारण करने वाला सिद्धांत है। यह कर्तव्य, नैतिकता, मर्यादा और सामाजिक तथा ब्रह्मांडीय व्यवस्था को बनाए रखने वाला व्यापक विचार है।

उनका मानना था कि धर्म के मूलभूत सिद्धांत शाश्वत और सार्वभौमिक होते हैं। धर्म की विकृति का मुख्य कारण विदेशी शिक्षा, विशेष रूप से ब्रिटिश द्वारा 'धर्म' का अनुवाद 'रिलीजन' के रूप में करना था। चूंकि धर्म सर्वोच्च है, इसलिए उपाध्याय जी ने आदर्श राज्य की कल्पना 'धर्मराज्य' के रूप में की, जहाँ सच्ची लोकतंत्र स्वतंत्रता को नैतिक शासन के साथ जोड़ता है। उन्होंने राजनीति को नैतिकता, सांस्कृतिक चेतना और सेवा भावना से जोड़ने का प्रयास किया। उनके अनुसार, राजनीति का चरित्र सेवा, त्याग और सदाचार पर आधारित होना चाहिए।

उन्होंने भारतीय धर्मनिरपेक्षता की आलोचना की, जो उनके अनुसार धर्म के विरुद्ध परिभाषित की गई थी, जिससे बौद्धिक और राजनीतिक बेतुकापन उत्पन्न हुआ। उपाध्याय जी ने जोर दिया कि धार्मिक स्वतंत्रता केवल तभी तक स्वीकार्य है जब तक वह अन्य मतों के लोगों की स्वतंत्रता का उल्लंघन न करे।

सामाजिक समरसता और स्वधर्म का सिद्धांत

एकात्म मानववाद व्यक्ति और समाज के एकीकरण का विचार है। उपाध्याय जी ने कहा कि व्यक्ति समाज के बिना अधूरा है, और समाज व्यक्ति के बिना निष्प्राण है।

व्यक्तिगत स्तर पर, धर्म का तात्पर्य व्यक्तिगत नैतिक कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से है, जिसे उन्होंने 'स्वधर्म' के रूप में समझाया। स्वधर्म का विचार यह बताता है कि प्रत्येक व्यक्ति की अद्वितीय क्षमताएँ होती हैं और उसे अपनी सामाजिक भूमिका और जीवन की अवस्था के आधार पर अपने कर्तव्य (स्वधर्म) का पालन करना चाहिए। यह समाज की समग्र भलाई के लिए कार्य करने को प्रोत्साहित करता है।

सामाजिक समरसता पर विचार करते हुए, उपाध्याय जी ने ज़ोर दिया कि समानता के नारे लगाने से पहले विवेकपूर्ण विचार आवश्यक है, क्योंकि व्यावहारिक और भौतिक दृष्टिकोण से सभी मनुष्य समान नहीं होते। उनमें भिन्न अंतर्निहित गुण होते हैं और इसलिए उनके कर्तव्य भी भिन्न होते हैं। यह दर्शाता है कि उनका दर्शन सामाजिक न्याय को मानव गरिमा, आत्मनिर्भरता और आंतरिक संतुलन के आधार पर परिभाषित करता है न कि पश्चिमी समरूपता के मॉडल पर। सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए राज्य और समाज दोनों को मिलकर जनता की मूलभूत जरूरतों को पूरा करना चाहिए।

अंत्योदय: अंतिम व्यक्ति का उत्थान

एकात्म मानववाद का सबसे महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक सिद्धांत 'अंत्योदय' है, जिसका शाब्दिक अर्थ है "अंतिम व्यक्ति का उदय"। यह अवधारणा गांधी के 'सर्वोदय' (सभी की प्रगति) से ली गई थी, लेकिन इसे अंतिम व्यक्ति के कल्याण को प्राथमिकता देने के स्पष्ट सिद्धांत के रूप में अपनाया गया।

अंत्योदय का उद्देश्य समाज के सबसे वंचित वर्गों—गरीबों, आदिवासियों, महिलाओं और ग्रामीण आबादी—के कल्याण को प्राथमिकता देना है। उपाध्याय जी का उद्घोष था कि "सब में बाँटो, कोई भूखा न रहे," और "अनपढ़ और मले-कुचले लोग ही हमारे नारायण हैं"। उनका यह दर्शन केवल विचार नहीं, अपितु क्रियान्वयन की एक पद्धति है। जिसके माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि विकास का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे।

स्वदेशी, स्वावलंबन और आर्थिक लोकतंत्र

उपाध्याय जी ने स्वदेशी की विचारधारा को बढ़ावा दिया और स्वावलंबन पर जोर दिया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थ नीति- विकास की एक दिशा' में लिखा था कि यदि हमारे कार्यक्रमों की पूर्ति विदेशी सहायता पर निर्भर रही तो यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बंधनकारक होगी और हम सहायता देने वाले देशों के आर्थिक प्रभाव में आ जाएंगे। इसलिए आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनना आवश्यक है।

उन्होंने आर्थिक लोकतंत्र का एक स्पष्ट मापदंड प्रस्तुत किया। यदि सभी के लिए एक वोट राजनीतिक लोकतंत्र की कसौटी है, तो 'सभी के लिए काम' आर्थिक लोकतंत्र का पैमाना है। आर्थिक लोकतंत्र के लिए न्यूनतम मजदूरी, न्यायसंगत वितरण प्रणाली, और सभी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है।

वर्तमान भारतीय परिदृश्य में वैचारिक प्रभाव

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शन आज भी भारतीय राजनीति और राष्ट्रीय विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। विजयवाड़ा में जनसंघ की 'अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा' (जनवरी 1965) का अधिवेशन हुआ था। उस अधिवेशन में 'सिद्धांत और नीति' नामक शीर्षक स्वीकृत हुआ, जिसका प्रारंभ 'एकात्म मानव दर्शन' से हुआ है। जनसंघ का नीति विषयक चिंतन इसी दर्शन के आधार पर खड़ा था और बाद में यही भारतीय जनता पार्टी की आधिकारिक वैचारिक नीति बन गया। दीनदयाल जी के विचार राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा प्रदान करते हैं। वर्तमान केंद्र सरकार ने उनके 'एकात्म मानववाद' और 'अंत्योदय' के सिद्धांतों को अपने शासन और नीति निर्माण में आत्मसात किया है। विकास को केवल आर्थिक संकेतकों से नहीं, बल्कि मानव गरिमा, आत्मनिर्भरता और आंतरिक संतुलन के आधार पर परिभाषित करने की उपाध्याय जी की वकालत आज 'आत्मनिर्भर भारत' की अवधारणा को बल देती है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का नारा 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास' दीनदयाल उपाध्याय के अंत्योदय दर्शन का सजीव रूप माना जाता है, जिसका लक्ष्य समाज के अंतिम व्यक्ति तक विकास की धारा पहुंचाना है।

नीतिगत स्तर पर, उनके सिद्धांतों का क्रियान्वयन विभिन्न सरकारी योजनाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है:

वित्तीय समावेशन और भ्रष्टाचार उन्मूलन: जनधन योजना के माध्यम से करोड़ों गरीबों और ग्रामीणों को वित्तीय समावेशन के दायरे में लाया गया। प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) के माध्यम से लोगों को लाभ पहुँचा कर भ्रष्टाचार को जड़ से समाप्त करने का प्रयास किया गया है। यह राजनीति में नैतिकता और राष्ट्रधर्म को प्राथमिकता देने के उनके विचार के अनुरूप है।

उज्ज्वला योजना ने करोड़ों परिवारों को धुआं मुक्त रसोई देकर महिलाओं के स्वास्थ्य और सम्मान का संरक्षण किया है। स्वच्छ भारत मिशन ने खुले में शौच की समस्या समाप्त कर महिलाओं की गरिमा को संरक्षित किया। प्रधानमंत्री आवास योजना से गरीबों को सुरक्षा और आत्मसम्मान मिला है। ये योजनाएं व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के संतुलित विकास पर केंद्रित हैं।

'आत्मनिर्भर भारत' और 'लोकल प्रोडक्ट खरीदने का आह्वान' जैसे 'एक जिला एक उत्पाद' स्वदेशी और स्वावलंबन की वकालत को दर्शाता है। मुद्रा योजना और वन धन योजना कुटीर उद्योगों और स्थानीय आर्थिक भागीदारी को मजबूत करके आर्थिक विकेंद्रीकरण की दिशा में प्रयास किया गया है।

वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में प्रासंगिकता

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए एक वैकल्पिक मार्ग प्रदान करता है। आज जब दुनिया जलवायु संकट, आर्थिक असमानता, सांस्कृतिक विघटन और मानसिक अवसाद जैसी समस्याओं से जूझ रही है, तब उनका दर्शन एक संतुलनकारी शक्ति के रूप में उभरता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने भाषण ने कहा था, **"हमें यह भी सोचना होगा कि किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में फंसे आज के विश्व को प्रगति – पथ पर अग्रसर करने के लिए क्या हम कुछ कर सकते हैं? हमें चाहिए कि आज की दुनिया पर बोझ बनकर न रहते हुए, केअल अपने स्वार्थ का ही विचार न करते हुए, अपनी संस्कृति और परम्परा में दुनिया को देने योग्य क्या क्या बातें हैं, इसका चिंतन कर जागतिक प्रगति के कार्य में सहयोग दें।"11**

पश्चिमी भौतिकवादी उपभोगवाद के विपरीत, उपाध्याय जी ने संयमित उपभोग और आध्यात्मिक संतोष पर जोर दिया, जो भारतीय संस्कृति का आधार है । उनका मॉडल, जो विकास को केवल आर्थिक संकेतकों से नहीं, बल्कि मानव गरिमा, समरसता और आंतरिक संतुलन से परिभाषित करता है , 21वीं सदी में एक समावेशी और धारणीय आर्थिक संरचना बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है ।

निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का वैचारिक दर्शन भारतीयता को उसकी अपनी दृष्टि से देखने का एक मौलिक प्रयास है । यह दर्शन, जो मानव के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के संतुलन को केंद्र में रखता है, एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना करता है जहाँ विकास अंतिम व्यक्ति के उत्थान, नैतिक मूल्यों के पालन और सांस्कृतिक चेतना की रक्षा पर आधारित हो। यह समग्रता और दूरदर्शिता ही उनके चिंतन को भारतीय राजनीतिक दर्शन में अद्वितीय स्थान प्रदान करती है।

उनका राष्ट्रवाद, जो भू-सांस्कृतिक चेतना (चिति) और भारत माता की धारणा पर आधारित है, पश्चिमी क्षेत्रीय राष्ट्रवाद के विपरीत, सांस्कृतिक मूल्यों और नैतिक शासन को सर्वोच्च स्थान देता है । आर्थिक क्षेत्र में अंत्योदय, स्वदेशी और विकेंद्रीकरण के उनके सिद्धांत आज के दौर में बढ़ती असमानता, केंद्रीकरण और आयात निर्भरता की चुनौतियों के लिए एक प्रासंगिक और स्वदेशी समाधान प्रस्तुत करते हैं ।

संदर्भ सूची

1. विनायक वासुदेव नेने (अनु.) मोरेश्वर तपस्वी – पं. दीनदयाल उपाध्याय -विचार दर्शन खंड -2 : एकात्म मानव – दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 05
2. शरद अनंत कुलकर्णी (अनु.) मोरेश्वर तपस्वी – पं. दीनदयाल उपाध्याय -विचार दर्शन खंड -4 : एकात्म अर्थनीति, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 07
3. वहीं, पृष्ठ संख्या – 08
4. विनायक वासुदेव नेने (अनु.) मोरेश्वर तपस्वी – पं. दीनदयाल उपाध्याय -विचार दर्शन खंड -2 : एकात्म मानव – दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 63
5. डॉ. विनोद मिश्रा – पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 104
6. विनायक वासुदेव नेने (अनु.) मोरेश्वर तपस्वी – पं. दीनदयाल उपाध्याय -विचार दर्शन खंड -2 : एकात्म मानव – दर्शन, पृष्ठ संख्या – 62
7. वहीं, पृष्ठ संख्या – 03-04
8. चंद्रशेखर परमानन्द भिषीकर (अनु.) मोरेश्वर तपस्वी – पं. दीनदयाल उपाध्याय -विचार दर्शन खंड -5 : राष्ट्र की अवधारणा, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 141
9. वहीं, पृष्ठ संख्या – 16
10. विनायक वासुदेव नेने (अनु.) मोरेश्वर तपस्वी – पं. दीनदयाल उपाध्याय -विचार दर्शन खंड -2 : एकात्म मानव – दर्शनपृष्ठ संख्या – 54- 55
11. वहीं, पृष्ठ संख्या – 04 (खंड 2)

प्लॉट नंबर 13 &14, गली नंबर 4डी, F ब्लॉक ,फेज 01, कुतुब विहार, साउथ वेस्ट दिल्ली, 110071